ज्ञानी जीव निवार भरम...

(कविवर पण्डितश्री दौलतरामजी)

ज्ञानी जीव निवार भरम तम, वस्तु स्वरूप विचारत ऐसे ॥टेक॥

सुत तिय बन्धु धनादि प्रकट पर, ये मुझते हैं भिन्न प्रदेशे।
इनकी परिणति है इन आश्रित, जो इनभाव परिणमे वैसे ॥1॥

देह अचेतन चेतन मैं इन, परिनति होय एकसी कैसे।
पूरन गलन स्वभाव धरे तन, मैं अज[1] अचल अमल नभ जैसे ॥2॥

पर परिणमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा राग-रुष[2] द्वन्द भये से।
नसे ज्ञान निज फँसे बन्ध में, मुक्ति होय समभाव लये से ॥3॥

विषय चाह दवदाह नशे नहिं, बिन निज सुधा सिन्धु पाये से।
अब जिन बैन सुने श्रवनन तैं, मिटे विभाव करूँ विधि तैसे ॥4॥

ऐसा अवसर कठिन पाय अब, निज हित हेत विलम्ब न करे से।
पछतावो बहु होय सयाने चेतन, 'दौल' छूटो भव भय से ॥5॥

---

१. अनादिनिधन; २. द्वेष